International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(3): 165-167

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(3): 165-167
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 12-03-2018
Accepted: 20-04-2018

डॉ. नन्दकिशोर ठाकुर
मध्य विद्यालय प्रखण्ड कॉलोनी,
नाथनगर, भागलपुर, बिहार, इंडिया।

Corresponding Author:
डॉ. नन्दकिशोर ठाकुर
मध्य विद्यालय प्रखण्ड कॉलोनी,
नाथनगर, भागलपुर, बिहार, इंडिया।

उपनिषद् साहित्य में भक्ति का स्वरूप

डॉ. नन्दकिशोर ठाकुर

प्रस्तावना

सम्पूर्ण विश्व साहित्य का आधार ग्रन्थ है वेद और वेद का अन्त वेदान्त, जिसे उपनिषद् कहा जाता है। उपनिषद् ज्ञान के निधि हैं। उपनिषदों में ही ब्रह्म स्वरूप का संकलन और आत्मदर्शन की साधना का विकास एवं अर्थविस्तार दिखता है। इसलिये उपनिषदों को 'आम्नायमस्तक' अर्थात् वेदों का उत्तमांग कहा जाता है। उपनिषद् में ब्रह्म के गूढ़ रहस्यों को सूत्रात्मक रूप में समझाया गया है। कठोपनिषद् में यमराज द्वारा नचिकेता को 'ब्रह्मतत्त्व' के रहस्य को समझाया गया है। वस्तुतः उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय 'ब्रह्म' ही है। यह ब्रह्मविद्या ही मोक्ष चाहने वाले जिज्ञासु मनुष्यों को ब्रह्म की प्राप्ति कराती है। भारतीयों का जीवनमूल्य एवं चैतन्यशक्ति उपनिषदों में ही है। भारतीयों के वैयक्तिक एवं आध्यात्मिक जीवन में उपनिषदों का अद्वितीय स्थान है। अतः उपनिषदों को 'आध्यात्मविद्या' भी कहा जाता है। ब्रह्मविद्या उपनिषद् या वेदान्त का प्रतिपाद्य विषय है। उपनिषद् कहते हैं कि 'वेदवाद' स्वर्गसाधक होने पर भी मोक्ष साधक नहीं हैं, एक मात्र ब्रह्मवाद के आश्रय से ही निःश्रेयस की प्राप्ति हो सकती है। उपनिषदों के निर्गुण ब्रह्मवाद में भक्ति का स्थान नहीं है, जो निर्गुण, निर्विशेष है उसके साथ भाव भक्ति का कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होता, यह आत्मबोध रूप है। अतः सगुण ब्रह्म के बिना भक्ति मूलक उपासना संभव नहीं है। वैसे तो उपनिषदों में ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का विवरण दिखाई देता है।

उपनिषद् साहित्य भारतीय दर्शन का चूडान्त ग्रन्थ समुच्चय है, जिसमें वेदार्थों की ही उत्कृष्टता पायी जाती है। इसीलिये तो उपनिषद् को वेदान्त की संज्ञा दी गयी है। अधिसंख्य लोगों की यह धारणा है कि उपनिषद् में भक्ति की चर्चा नहीं हुई है, परन्तु यह यथार्थ नहीं है। वस्तुतः उपनिषदों में परमात्मविषयक भक्ति आत्मविषयक बनकर और भी पैनी बन जाती है, जिसकी गरिमा एवं महिमा अपने आप में विलक्षण है।

प्रस्तुत लघु शोध निबंध को अत्यन्त संक्षेप में उपस्थापित किया जायेगा जो उपनिषद् में भक्ति का मात्र दिग्दर्शन ही होगा। उपनिषद् ऐसी विद्या है, जो मनुष्य को प्रभु के निकट उपस्थित करती है। उपनिषदों के कण–कण से आत्म भक्ति का अमृतरस टपकता है। उपनिषद् रूपी मानसरोवर में भक्ति रूपी कमल चारों ओर खिले हुए दिखाई पड़ते हैं। उपनिषदों के अनुसार परमात्मा तर्क का विषय नहीं है, वरन् वह केवल भक्ति के द्वारा ही जाना जाता है। जो मनुष्य अपने मन को शुद्ध और पवित्र करके प्रभु की भक्ति करता है, उसी के लिए प्रभु अपने आप को प्रकट कर देते हैं। उपनिषद् परमात्मा को हमसे कहीं दूर नहीं स्थापित करता है। वे हमारे हृदय के अन्तःकरण में विराजमान हैं। वे स्थिर होने पर भी दूर चले जाते हैं। वे हमारी सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। वे सोये हुए में भी सदा जागृत रहते हैं। हमारी इन्द्रियाँ उन्हीं से शक्तियाँ प्राप्त करती हैं। वे आँखों का आँख, कानों का कान तथा मनों का भी मन हैं। परमात्मा नित्य सनातन द्रष्टा है, वह बाहर नहीं, भीतर है। अतः उसे आँखों से कोई देख नहीं सकता है। कठोपनिषद में कहा गया है–

"कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षद्
आवृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन्।" [1]

सूर्य में जो हम तेज देखते हैं, वह विराट् आत्मा का तेज है, जिसे हम परमात्मा कहते हैं। यदि वे अपना तेज हटा लें, तो सूर्य की हस्ती राख के अम्बार से अधिक नहीं होगी। अतः उपनिषद् भक्ति रस की सूक्ष्मता से सराबोर है। जिस प्रकार शीत से आतुर मनुष्य का अग्नि के पास जाने से शीत खत्म हो जाता है, उसी प्रकार प्रभु की भक्ति करने से सब दुःख–दोष दूर होकर परमात्मा के गुण–कर्म स्वाभाव के अनुसार जीवात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव हो जाते हैं। प्रभु की भक्ति करने से हमारे

आत्मा का बल इतना अधिक बढ़ जाता है कि हमारा मन दुःखी होने पर भी नहीं घबड़ाता है। जिस प्रकार गर्मी के दिनों में हिमालय के निकट जाने पर शरीर को ठंडी वायु अपनी शीतलता से आनन्द देने लगती है, ठीक उसी प्रकार ईश्वर की भक्ति करने से शान्ति की शीतलता हृदय को स्पर्श करने लगती है, क्योंकि प्रभु–भक्ति में बड़ा रस है। छान्दोग्य–उपनिषद् में कहा गया है

"स एव रसानां रसतमः परमः परार्ध्योऽष्टमो य उद्गीथः।।" [2]

अर्थात् प्रभु भक्ति सबसे उत्कृष्ट और सर्वोत्तम रस है। यह वह रस है, जो अपने माधुर्य से मन रूपी चातक को मतवाला कर देता है। उपनिषदो में आत्मा को रस की संज्ञा दी गई है।

रसो वै सः [3]

उपनिषदों के अनुसार हमारा शरीर ही भगवान् का मन्दिर है। यही वह स्थान है, जहाँ देवताओं के दर्शन होते हैं। परमात्मा तो जर्रे–जर्रे में रमा हुआ है। सभी स्थानों पर वह अग्नि के समान विराजमान है, किन्तु परमात्मा के दर्शन केवल इसी देवमन्दिर में होते हैं। यही वह मन्दिर है, जिसके बाहर सब दरवाजे बंद हो जाने पर जब भक्ति का भीतरी पट खुल जाता है तब आत्मिक ज्योति अपने–आप प्रकट होती है, फिर तो वह प्रदीप्त आत्मा स्वयं में स्वयम्भू ज्योतिर्लिङ्ग ही हो जाता है।
कठोपनिषद् में 'आत्मा' जैसे गूढ़ विषय का वर्णन बहुत ही सूक्ष्म रूप से किया गया है। इसमें 'कृपावाद' का स्पष्ट उल्लेख है–

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुँ स्वाम्।" [4]

अर्थात् इस आत्मा को शास्त्र की व्याख्या के द्वारा नहीं प्राप्त कर सकते, मेधा के द्वारा भी नहीं एवं अनेक प्रकार के पांडित्य द्वारा भी नहीं। यह जिसपर कृपा करता है, केवल वही इसको प्राप्त कर सकता है। उसके सामने यह आत्मा अपने स्वरूप को प्रकाशित करता है। उपनिषद्कार ने कहा है–

"उर्ध्व प्राणमन्नुयत्यपानं प्रत्यगस्यति।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते।।" [5]

अर्थात् ब्रह्म प्राणवायु को उर्ध्व दिशा में प्रेरित करता है, अपान वायु को निम्न दिशा में। वह 'सत्यम्' भजनीयरूप में हृदय में और हृदय के भीतर निवास करता है, उसकी सभी देवता उपासना करते हैं। देवता जिसकी उपासना करते हैं, ऐसे प्राणवायु के प्रणेता, जीवमात्र को जीवन्त रखने वाले प्रभु की मनुष्यमात्र को आराधना करनी चाहिए। उपनिषद्कार का मानना है कि ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए ब्रह्म की कृपा प्राप्त करनी पड़ती है और यह ब्रह्मकृपा ज्ञान के द्वारा प्राप्त नहीं होती। इसके लिए ब्रह्म की सर्वोपरि सत्ता को स्वीकार करके भक्ति के द्वारा भगवद्–प्राप्ति होती है। कठोपनिषद् में कहा गया है–

"अणोरणीयान् महतो महीयान्
आत्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः।।" [6]

उपनिषद् में जगह–जगह पर शान्त एवं दास्यभाव की भक्ति के दर्शन होते हैं, साथ–साथ सख्यभाव की भक्ति भी दिखाई पड़ती है–

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्य नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।" [7]

मधुर एवं वात्सल्यभाव की उपासना दस प्रधान उपनिषदों में नहीं है। कृष्णोपनिषद्, गोपलपूर्वतापनी उपनिषद् आदि में मधुर एवं वात्सल्य भाव की उपासना आती है। उपनिषदों में ब्रह्म भिन्न वस्तु की ब्रह्म के रूप में उपासना करने की बात आती है। इस प्रकार की उपासना को प्रतीक उपासना कहते हैं क्योंकि सारे पदार्थ ब्रह्म के ही अंश हैं, जिसमें ब्रह्म न हो, ऐसी कोई वस्तु नहीं है–

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" [8]

अर्थात् जगत् की सभी वस्तुएँ ब्रह्म हैं, उससे ही प्राणी जन्म लेता है, उसी में लीन हो जाता है एवं उसी से अनुप्राणित होता है। ऐसा मानने से मनुष्य की द्वेषभावना खत्म हो जायेगी एवं मन शान्त रहेगा। जब मन शान्त होता है, तो उपासना में तन्मयता रहती है। उसी प्रकार की प्रतीक उपासना उपनिषदों में दिखाई देती है–

"मनो ब्रह्मोत्युपासीत्" [9]

मन की ब्रह्म रूप में उपासना करनी चाहिए। जैसे ब्रह्म को इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार मन भी इन्द्रियों के द्वारा गृहीत नहीं होता। इसी कारण मन की ब्रह्मरूप में उपासना करने की बात कही गयी है। जिस प्रकार सूर्य ज्योतिर्मय है, उसी प्रकार ब्रह्म भी ज्योतिर्मय है। इस समानता के कारण सूर्य की भी ब्रह्मरूप में उपासना करने की बात उपनिषद् में है। उपनिषद् में दिशाएँ, पृथ्वी, अंतरिक्ष, समुद्र, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, चक्षु और मन आदि की भी ब्रह्मरूप में उपासना करने की बात कही गयी है।
भक्ति रूपी मानसरोवर में अवगाहन से मनुष्य के सभी कल्मष दूर हो जाते हैं। जिस प्रकार एक बालक अपने माता–पिता की गोद में बैठता है, उनसे मीठी–मीठी बातें करता है, उसी प्रकार हम अनुभव करें कि हम परमात्मा की अमृतमयी गोद में बैठे हैं और उनकी दया का हाथ हमारे सिर के ऊपर है। भक्त सोचता है कि चाहे मैं हिंसक पशुओं के बीच निर्जन वन में होऊँ अथवा महासागर के अगम्य जल के ऊपर, जब मेरे पिता अगम्य जल के ऊपर मेरे साथ हैं और उनका पावन हाथ मेरे सिर के ऊपर है, तब भय किस बात का? मेरे प्रभु किसी ऐसे स्थान में नहीं है, जो मुझसे दूर हों और जहाँ से वे मुझे देख न रहे हों। मेरे प्रभु तो मेरे रोम–रोम में समाये हुए हैं और इतने महान् हैं कि मैं जहाँ जाता हूँ, उनकी उज्ज्वल ज्योति वहीं पाता हूँ। अतः उपनिषद् में भक्ति की पराकाष्ठा के रूप में निर्भयता को ही प्रतिष्ठित किया गया है– **'मा भैषीः'**।
उपनिषद् उपासना या भक्ति का विज्ञान है। विशेषतः भक्ति के सम्बन्ध में पराभक्ति का उपनिषद् में विशेष महत्त्व है। गुरु के प्रति पराभक्ति उपनिषद का मूल मंत्र है । अतः इसके सम्बन्ध में श्वेताश्वतरोपनिषद में कहा गया है–

"यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।" [10]

अर्थात् इस उपनिषद् में जिन विषयों का उल्लेख है, महात्मागण उन सब विषयों को एकमात्र उसके निकट ही व्यक्त करते हैं, जिसमें पराभक्ति है। जैसे देवता में वैसे गुरु में अर्थात् देवता और गुरु के प्रति पराभक्ति ही इस उपनिषद् ज्ञान–प्राप्ति का एक मात्र उपाय है।
उपनिषद् साहित्य की आद्याकृति ईशावास्योपनिषद् के अन्तिम मन्त्र अपने आराध्य अग्निदेव के प्रति समर्पित भक्ति का सुन्दर दृष्टान्त है–

अग्ने नय सुपथा रायेऽस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्धान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।।'' [11]

यहाँ भक्त आध्यात्मिक एवं भौतिक समृद्धि के लिए सुन्दर मार्ग से ले जाने हेतु अपने आराध्य की अर्चना करता है। कुटिल पापों के कठोर बन्धन से मुक्ति के बदले वह अपने आराध्य को अतिशय नमस्कारोक्ति अर्पित करने हेतु आतुर है। श्रीमद्भागवत माहात्म्य के प्रथम श्लोक में **'श्री कृष्णाय वयं नुमः'** [12] कहने वाले व्यास की उक्ति तथा **'भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम'** कहने वाले भक्त एक ही धरातल पर अवस्थित हैं और यह धरातल है–ज्ञान एवं वैराग्य की प्रसविनी एवं प्रभु की प्रियतमा भक्तिमहारानी की।

उपनिषद् के अतिरिक्त आरण्यक तथा ब्राह्मण साहित्य में भी भक्ति का असाधारण महत्त्व है। इन दोनों ग्रन्थों में मन्त्रशक्ति के साथ भक्ति तत्त्व का सांयोगिक सौरभ्य सुधी पाठकों से अप्रत्यक्ष नहीं है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि भक्ति मानव–मात्र का एक विशेष गुण है। इससे समन्वित होकर मानव परमेश्वरमय हो जाता है। भक्ति के सहारे ही भक्तराज प्रह्लाद और बालक ध्रुव ने अपने आराध्यदेव का साक्षात्कार किया है। फलस्वरूप उन्हें संसार के महत्तम लक्ष्य की प्राप्ति हुई। वस्तुतः भक्ति भाव का विषय है। उपनिषद् का उद्देश्य भक्ति द्वारा ज्ञान की प्राप्ति तथा ज्ञान के द्वारा ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है। उपनिषद् के अनुसार केवल अनन्य भक्ति के द्वारा ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है। उपनिषद् में केवल ज्ञान की ही चर्चा नहीं है। पहले भक्ति, बाद में ज्ञान और ज्ञान के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति। यहाँ परमात्मा तर्क का विषय नहीं है, वह केवल भक्ति के द्वारा ही जाना जाता है। परमात्मा एक है और सारे संसार को वश में रखता है। जबतक किसी व्यक्ति में ब्रह्म के प्रति भक्ति की भावना नहीं जगेगी तबतक वह भक्ति में लीन नहीं हो सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि **''भक्ति भाव का विज्ञान है''**, तथा भक्ति के आधान भगवान् जनार्दन भावग्राही ही हैं– **''भावग्राही जनार्दनः।''** भक्ति साधना के जो बीज वैदिक युग में बोये गये थे, वही क्रमिक विकास के रूप में उपनिषद् युग में आकर अंकुरित और पल्लवित हुए हैं।

संदर्भ–सूची :

1. कठोपनिषद्– 02/01/01
2. छान्दोग्योपनिषद्– 01/03
3. तैत्तिरीयोपनिषद्– 02/07
4. कठोपनिषद्– 01/02/23
5. कठोपनिषद्– 02/02/03
6. कठोपनिषद्– 01/02/20
7. मूण्डकोपनिषद्– 03/01/11
8. छान्दोग्योपनिषद्– 03/14/01
9. छान्दोग्योपनिषद्– 03/18/11
10. श्वेताश्वतरोपनिषद्– 06/23
11. ईशावास्योपनिषद्– 18
12. पद्मपुराण श्रीमद्भागवत महात्म्य– 01/01